# अमर क्षणिकाएँ

**- उपाध्याय अमरमुनि**

एक जाति हो, एक राष्ट्र हो,
एक धर्म हो धरती पर ।
मानवता की 'अमर' ज्योति,
सब ओर जगे, जन-जन घर-घर ।।

प्रस्तोता :

**एन. सुगालचन्द सिंघवी**

प्रकाशक :

**सुगाल एण्ड दामाणी**

11, पोनप्पा लेन, ट्रिप्लीकेन, चेन्नई - 5.

❖ अमर क्षणिकाएँ

❖ उपाध्याय अमरमुनि

❖ प्रवेश : दिसम्बर 2010

❖ **Published by :**

**SUGAL & DAMANI**
No. 11, Ponnappa Lane, Triplicane
Chennai-600 005, India.
Phone : 044 - 2848 13547, 2848 1366
E-mail : sugalchand@yahoo.com
www.sugaldamani.com

**Copies can be had from**

**SUGAL & DAMANI**
6/35.W.E.A. Karolbagh,
New Delhi - 110 005.

405, Krushal Commercial Complex
G. M. Road, Above Shopper's Stop
Chembur (W), Mumbai- 400089.

A Wing, Kapil Tower,
II Floor 45, Dr. Ambedkar Road,
Near Sangam Bridge, Pune - 411001.

1554, Sant Dass Street,
Clock Tower, Ludhiana-141008.

Swagat Business PVT. LTD.
46-4, Paudit Madan Mohan Malviya Sarani
Chakravaria Road North, Kolkatta - 700 020. (W.B.)

**Veerayatan**
**Rajgir - 803116.** Dist. Nalanda (Bihar)

❖ कम्प्यूटराइज्ड : जैन प्रकाशन केन्द्र, 53, आदिअप्पा नायकन स्ट्रीट साहुकारपेठ, चेन्नई- 79. Cell : 93822 91400

❖ मुद्रक : गोपससं पैपर्स लिमिटेड, नोएडा ।

❖ ISBN

❖ Rs. 100/-

# आशीर्वचनम्

जैन समाज के हितचिन्तक, कविरत्न, राष्ट्रसन्त, परम श्रद्धेय गुरूदेव, उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म. सा. की वाणी 'सूक्त-वाणी' थी । गागर में सागर समाहित कर लेना, उनकी वाणी की सहजरूपेण विशेषता थी । उनके वस्त्र तो श्वेत थे ही, उनका मानस भी अति शुभ्र एवं उज्ज्वल था । जो भी चिन्तन की बदली में कौंधा, उसे विचारों की वर्षा में परिणित कर जन-जन के समक्ष प्रस्तुत कर दिया ।

गुरूदेव श्री के विचार, उस समय जितने सामयिक थे, उतने ही आज भी सामयिक है । कवि, विचारक एवं समाज का हितचिन्तक मरण-धर्म को प्राप्त हो जाने के बाद भी सदैव कालजयी होता है- अपने साहित्य एवं कवित्व के माध्यम से । गुरूदेव भी अमर थे, अमर हैं तथा अमर ही रहेंगे, क्योंकि उनका साहित्य भी कालजयी है ।

गुरूदेव श्री के साहित्य-सागर में से कतिपय अमृत-कणों को, श्रीमान् सुगालचन्दजी सिंघवी, चेन्नई - जो वीरायतन की विचारधारा से विगत दो दशकों से जुड़े हुए हैं तथा पदाधिकारी भी हैं - ने संकलन कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है ।

ये लघु कविताएँ एवं मुक्त-छन्द जीवन एवं विचारों को और अधिक सुन्दर एवं रमणीय बनाने में अवश्य ही सहभागी बनेंगे ।

भविष्य में भी, आप इसी प्रकार गुरूदेवश्री के साहित्य के प्रचार-प्रसार में निरन्तर सहभागी बने रहेंगे । इसी आशीर्वचन के साथ-

**- आचार्य माँ चन्दना**

# आत्म-निवेदनम्

सन्त की वाणी देश, समाज, धर्म, पंथ आदि से परे होती है । सन्त की वाणी में सत्यता निहित होती है तथा होती है- ''सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय'' की मंगलमयी अखण्ड भावना ! सन्त किसी का बुरा नहीं चाहता, वह तो ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः'' की कामना से ओतःप्रोत होता है । इसीलिये तो किसी कवि ने कहा है -

तरवर, सरवर सन्तजन, चौथा बरसे मेह ।
पर-उपकार के कारणे, चारों धारी देह ।।

सन्त निन्दा, स्तुति, प्रशंसा से विलग होता है, स्वार्थ से परे रहते हुए मात्र स्व-अर्थ में तल्लीन रहकर, परमार्थ का रहस्य जन-जन में बाँटता हुआ सतत अपने लक्ष्य की ओर अभिमुख रहता है । तभी तो उसकी वाणी में जो गूंज होती है, वह प्रत्येक की आत्मा को अनुगूंजित करती है ।

कविरत्न उपाध्याय श्री अमरमुनिजी म.सा. भी ऐसे ही विरले सन्त थे, जिन्होंने समाज को एक नई दिशा प्रदान की । आपश्री ने भगवान् महावीर के उपदेशों को मात्र उद्घोषित ही नहीं किया अपितु उसे अपने जीवन में आचरित किया तथा मानवता की सुरसरिता को पुनर्जीवित किया । प्रभु महावीर की वाणी को धर्म, पंथ-सम्प्रदाय से मुक्त करते हुए उसे सार्वजनीन बनाया । आपके काव्य एवं लेखन में धर्म, मानवता आदि की जो व्याख्याएं हैं, वे अन्यत्र अनुपलब्ध है ।

''सागर नौका और नाविक'' ग्रन्थ का पठन किया तो सहज ही यह भावना बनी- इसकी कुछ सामग्री पाठकों तक भी पहुँचाई जाय । बस उसी भावना की क्रियान्विति है, यह पुस्तिका प्रकाशन ।

आचार्य श्री चन्दनाजी ने आशीर्वचन प्रदान कर इसके प्रकाशन की गरिमा को और अधिक गौरवान्वित कर दिया है ।

इन लघु अमर क्षणिकाओं को मुद्रित करने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि आज का मानव अवसाद एवं चिन्ता से गस्त है । कदम-कदम पर भय तथा अराजकता का साम्राज्य है । मन मायूस है । चेहरे से प्रसन्नता की रेखाएँ विलीन है । निराशा के घने कोहरे से व्यक्ति व्यथित है ।

ऐसी स्थिति में इन लघु अमर क्षणिकाओं का मनोयोग पूर्वक जो भी पाठक अध्ययन करेगा तथा इनमें निहित भावों पर चिन्तन-मनन करेगा तो अवश्य ही उसके जीवन में सुख-शान्ति की बहार आयेगी । आशा की एक किरण प्रस्फुटित होगी । कर्त्तव्य के साथ कर्म करने की एक ललक जगेगी । सकारात्मक सोच बनेगी । दानवता का स्थान मानवता ग्रहण करेगी । अदम्य साहस एवं नव जागरण का सूर्य उसके जीवन में उदित होगा - ऐसा मेरा विश्वास है ।

वीरायतन के महामंत्री श्रीयुत टी. आर. डागा एवं वीरायतन के पदाधिकारियों ने इस पुस्तिका के प्रकाशन में प्रेरणा एवं स्वीकृति प्रदान की है, तदर्थ मैं सभी का आभारी हूँ ।

साथ ही साथ प्रकाशन की प्रेरणा के लिये अपने अभिन्न सहभागी श्री जी.एन. दामाणी, श्री आर.एन. दामाणी, श्री प्रवीणभाई छेड़ा, श्री किशोर अजमेरा का भी तहेदिल से अभिनन्दन करता हूँ ।

मैं अपनी चिर सहयोगिनी, धर्म सहायिका श्रीमती चन्द्राबाई एवं मेरे सुपुत्र चि. प्रसन्नचन्द एवं विनोदकुमार की अनुशंसा करता हूँ कि जिनकी सेवा-भावना से यह पुस्तिका मैं प्रस्तुत कर पाया ।

विश्वास है कि पाठक-गण इस पुस्तिका के एक-एक सूक्त एवं कविता के माध्यम से अपने जीवन को कृतार्थ करेंगे ।

**- एन. सुगालचन्द सिंघवी, चेन्नई**

# अनुक्रमम्


- अमर क्षणिकाएँ 1
- पुरूषार्थ 41
- मनोमंत्र 42
- ज्योतिर्मयी 43
- दीक्षा 44
- दीक्षा 45
- वीर-वन्दना 48
- युग पुरूष तुम्हें शत-शत वन्दन 50
- श्रद्धा-सुमन 51
- वीरायतन-दर्शन 53

# अमर क्षणिकाएँ

आदि पुरूष, आदीश जिन,
आदि सुविधि कर्तार ।
धर्म-धुरंधर परम गुरू,
नमो आदि अवतार ।।

शुचि कर्मों की दीपमालिका,
जग का तमस हरेगी ।
स्नेह, शांति, सुख की जय लक्ष्मी,
घर-घर में विचरेगी ।।

प्रभु का दर्शन पाना है तो
खोज रहे क्यों धरती-अंबर ?
निर्मल ज्योति विराजित है प्रभु,
सदाकाल से निज घट अन्दर ।।

मुक्ति और संसार चक्र के
गूढ़ तत्त्व का भेद खोलता ।
अनेकान्त जो ज्ञान-तुला पर,
परम सत्य का मर्म तोलता ।।

आँख खोल कर देखो-परखो,
करो न बन्द बुद्धि के द्वार ।
छिन्न-भिन्न कर दो तमसावृत्त,
रूढ़िवाद का कारागार ।।

ओ अतीत की गहन तटी में रमने वालों !
मुक्त द्वार पर रमती ज्योति-शिखा पहचानो !
मृत अतीत पर, झख-झखकर, क्या रोना पल-पल-
वर्तमान की माँग सुनो, जीवन संधानो !!

जीवन की उत्तप्त धरा को,
स्नेह-सुधा से प्लावित कर दो ।
व्यक्ति, जाति के अहंभाव को,
धिक्कृत और तिरस्कृत कर दो ।।

विष के बदले अमृत बाँटें,
विष को भी अमृत में बदलें ।
क्रोध-घृणा की ज्वालाओं को
मधु स्मित की लहरों में बदलें ।।

तू मानव है, स्वयं स्वयं का-
स्रष्टा असली भाग्य विधाता ।
नर के चोले में नारायण, तू है
निज-पर सब का त्राता ।।

मन का हारा ही हारा है,
मन का जीता ही जीता है ।
तन में प्राण रहे तो क्या है,
मृत है जो मन से रीता है ।।

क्या कमी तुझे है त्रिभुवन में,
यदि तू पाना चाहे ।
सब-कुछ करने की क्षमता है,
यदि तू करना चाहे ।।

जहाँ पसीना पड़े मित्र का,
अपना रक्त बहा डालो ।
झेले अगणित कष्ट स्वयं पर
सुखिया मित्र बना डालो ।।

अत्याचारी दमन चक्र के,
सम्मुख गिरि-सम अड़े रहो ।
अन्तिम रक्त-बिन्दु तक अपने,
सत्य-पक्ष पर खड़े रहो ।।

दिल साफ तेरा है कि नहीं, पूछले जी से,
फिर जो कुछ भी करना हो, कर तू खुशी से,
घबरा न किसी से ।

जाती है जिस ओर दृष्टि,
बस उसी ओर आकर्षण ।
करता अग-जग को अनुप्राणित,
जग नायक का जीवन ।।

'प्राणिमात्र प्रभु के बेटे' - यह धर्म-कथन है,
प्राणी-प्राणी में यही भाव, समता का धन है ।
समता के इस बंधुभाव पर धर्म टिका है -
बंधु भाव ही अतः विश्व का सत्य परम है ।।

कोई रोती आँख मिले ना,
मिले न मुख की करूण पुकार ।
हँसता-खिलता हर जीवन हो,
विश्व बने यह सुख आगार ।।

आँखों के खारे पानी से,
किसका जग में काम चला ?
वज्र-हृदय मानव ही देते -
हैं संकट की शान गला ।।

धन्य धन्य है वे नारी-नर,
कर्म-निरत है जिनका जीवन ।
निज-पर का कल्याण-हेतु है,
कर्म योग का पथ अति पावन ।।

जिसकी जड़ में ज्ञान रहा है,
और अन्त में जनहित फल है ।
वह ज्योतिर्मय कर्म-योग है,
जहाँ अमंगल भी मंगल है ।।

विश्व - भाव में हृदय मिला लो,
स्वात्म भाव से जगत् खिला लो ।
वही 'अर्हम्' का स्वर फूटेगा -
मानव, मन-सागर लहरा लो ।।

हँस लो स्वयं हँसा लो पर को,
अमर-प्रेम-मणि-दीप जला लो ।
अन्तर के सत्-सरस-धार से,
जग मरूथल सींचो लहरा दो ।।

कुछ भी नहीं असंभव जग में,
सब संभव हो सकता है ।
कार्य हेतु यदि कमर बांध लो,
तो सब कुछ हो सकता है ॥

जीवन है नदियाँ की धारा,
जब चाहो मुड़ सकती है ।
नरक लोक से स्वर्ग लोक से,
जब चाहो जुड़ सकती है ।।

बन्धन-बंधन क्या करते हो,
बंधन मन के बंधन हैं ।
साहस करो उठो झटका दो,
बंधन क्षण के बंधन हैं ।।

बीत गया गत, बीत गया वह,
अब उसकी चर्चा छोड़ो ।
आज कर्म करो निष्ठा से,
कल के मधु सपने जोड़ो ।।

तुम्हें स्वयं ही स्वर्णिम उज्ज्वल,
निज इतिहास बनाना है ।
करो सदा सत्कर्म विहँसते,
कर्म-योग अपनाना है ।।

मन के हारे हार हुई है,
मन के जीते जीत सदा ।
सावधान मन हार न जाये,
मन से मानव बना सदा ।।

तूं सूरज है, पगले ! फिर क्यों,
अंधकार से डरता है ?
तूं तो अपनी एक किरण से,
जग प्रदीप्त कर सकता है ।।

अन्तर्मन में सद्भावों की,
पावन-गंगा जब बहती ।
पाप-पंक की कलुषित रेखा, नहीं
एक क्षण को रहती ।।

धर्म हृदय की दिव्य ज्योति है,
सावधान बूझने न पाये ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-अहं के,
अंधकार में डूब न जाये ।।

जाति-धर्म के क्षुद्र अहं पर,
लड़ना केवल पशुता है ।
जहाँ नहीं माधुर्य भाव हो,
वहाँ कहाँ मानवता है ।।

मंगल ही मंगल पाता है,
जलते नित्य दीप से दीप ।
जो जगती के दीप बनेंगे,
उनके नहीं बूझेंगे दीप ।।

धर्म न बाहर की सज्जा में,
जयकारों में आडम्बर में ।
वह तो अंदर-अंदर गहरे,
भावों के अविनाशी स्वर में ।।

'मैं' भी टूटे 'तूं' भी टूटे,
एक मात्र सब हम ही हम हो ।
'एगे आया' की ध्वनि गूंजे,
एक मात्र सब सम ही सम हो ॥

यह भी अच्छा, वह भी अच्छा,
अच्छा-अच्छा सब मिल जाये ।
हर मानव की यही तमन्ना,
किन्तु प्राप्ति का मर्म न पाये ॥

अच्छा पाना है, तो पहले,
खुद को अच्छा क्यों न बनाले ।
जो जैसा है उसको वैसा,
मिलता यह निज मंत्र बनालें ।।

परिवर्तन से क्या घबराना,
परिवर्तन ही जीवन है ।
धूप-छाँव के उलट फेर में,
हम सबका शक्ति-परीक्षण है ।।

सत्य, सत्य है, एक मुखी हैं,
उसके दो मुख कभी न होते ।
दम्भ एक ही वह रावण है,
उसके दस क्या, शत मुख होते ॥

एक जाति हो, एक राष्ट्र हो,
एक धर्म हो धरती पर ।
मानवता की 'अमर' ज्योति
सब ओर जगे, जन-जन घर-घर ।।

# पुरूषार्थ

जीवन सेज नहीं सुमनों की,
सो जाओ खर्राटे मार ।
जीवन है संग्राम निरंतर,
प्रतिपद कष्टों की भरमार ।।

कहीं बिछे मिलते हैं काँटें,
कहीं बिछे मिलते हैं फूल ।
जीवन-पथ में दोनों का ही -
स्वागत, दोनों ही अनुकूल ।।

जीवन-नौका का नाविक है,
एक मात्र पुरूषार्थ महान् ।
सुख-दुख की उत्ताल तरंगें,
कर न सके उसको हैरान ।।

# मनोमंत्र

मानव का उत्थान-पतन सब,
अन्तर्मन पर अवलंबित है ।
निज-पर का हित और अहित सब
मात्र उसी पर आधारित है ।।

उजला या काला भविष्य है,
वर्तमान के भाव-तंत्र में ।
जो चाहो सो बन सकते हो,
महाशक्ति है मनोमंत्र में ।।

पापी या पुण्यात्मा तुमको,
करे तुम्हारा अन्तर्मन ही ।
सबसे पहले इसे संवारो,
मूल कर्म का है चिन्तन ही ।।

जब भी सोचो अच्छा सोचो,
मन को सौम्य, शान्त, शुभ गति दो ।
अंधकार-युत जीवन-पथ को,
ज्योतिर्मय निज-पर हित मति दो ।।

# ज्योतिर्मयी

नारी, तेरी गरिमाओं के
शुष्क न दिव्य स्रोत ये होंगे ।
तेरी महिमाओं के उज्ज्वल,
कभी न धूमिल तारे होंगे ।।

सरस्वती तू, लक्ष्मी तू है,
चण्डी तू है, सदा शिवानी ।
शिव-संवर्धक, अशिव नाशिनी,
तेरी लीला जन-कल्याणी ।।

मन विराट तव नभ मण्डल-सा
तू देवी मृदु करूणा की है ।
दिव्य मूर्ति तू पुण्य योग की
नहीं मूर्ति अघ-छलना की है ।।

तू बदले तो घर बदलेगा,
जग बदलेगा, युग बदलेगा ।
जीवन के निर्माण-मार्ग पर
स्वर्ग हर्ष गद्‌गद्‌ उछलेगा ।।

तुझे राक्षसी कहा किसी ने,
भूल गया वह पथ यथार्थ का ।
अपनी दुर्बलता, कुण्ठा का,
डाला तुझ पर भार व्यर्थ का ।।

# दीक्षा

दीक्षा का पथ असिधारा है,
विरले ही चल पाते हैं ।
जो चलते हैं आत्म देव के
दर्शन वे कर पाते हैं ।।

कब का सोया अन्दर में वह
देव, जगाना है उस को ।
धन्य धन्य वह, दीक्षा की यह
अर्थ-चेतना है जिसको ।।

# दीक्षा

- दीक्षा
  असत् से सत् की ओर
  तमस् से आलोक की ओर
  मृत्यु से अमरत्व की ओर
  अग्रसर होने वाली
  एक अखण्ड ज्योतिर्मय
  जीवन यात्रा !

- दीक्षा
  बाहर से अन्दर में
  सिमट आने की
  एक अद्‌भुत आध्यात्मिक साधना है,
  तो
  अन्दर से बाहर फैलने की
  एक सामाजिक कमनीय कला भी है !
  आध्यात्मिक और सामाजिकता का
  सुन्दर समन्वय है इस पथ पर !

- दीक्षा
  अशुभ का बहिष्कार है,
  शुभ का संस्कार है,
  शुद्धत्व का स्वीकार है !
  'स्व' की 'स्व' से 'स्व' को
  सहज स्वीकृति ही तो दीक्षा है !

- दीक्षा
  स्वयं पर स्वयं का शासन
  स्वयं पर स्वयं का नियंत्रण,
  सद्गुरू मात्र साक्षी है,
  पथ का भोमिया है,
  शेष सब-कुछ शिष्य पर !
  जगाता गुरू है, कर्ता-धर्ता शिष्य है ।

- श्रद्धा का घृत,
  ज्ञान की बाती,
  कर्म की ज्योति,
  यही है दीक्षा का मंगल दीप,
  जिसकी स्वर्णिम आभा से
  हो जाता तमसावृत अन्तर,
  ज्योतिर्मय अक्षय अजरामर !

- शत्रु-मित्र में
  यश-अपयश में
  हानि-लाभ में
  सुख में दुःख में
  सहज तुल्यता समरसता ही
  दीक्षा का सत्यार्थ बोध है
  इसीलिए दीक्षा का सत्पथ
  नहीं नरक लोक को जाता
  नहीं स्वर्ग लोक के प्रति ही

वह जाता है मात्र मोक्ष को ।
और मोक्ष है,
'स्व' का 'स्व' में
सदा-सदा के लिए निमज्जन !

- 'मैं' 'तू' में मिल जाए,
'तू' 'मैं' में मिल जाए,
प्राण-प्राण में सदा-सदा को
निजता ममता घुल-मिल जाए,
जो भी है समरस हो जाए,
यह अनुपम अद्वैत योग ही
जिन-दीक्षा का विमल योग है !

# वीर - वन्दना

महावीर अतिवीर जिनेश्वर,
वर्धमान जिनराज महान् ।
गुण अनन्त, हर गुण अनन्त तव,
नहीं अन्त का कहीं निशान ।।

कब से तेरा चित्र लिए जग,
खोज रहा तव रूप-समान ।
मिला न कोई, थके सभी हैं,
तेरी-सी बस तेरी शान ।।

तन के मानव पतित हुए थे,
मन-मानवता अन्तर्धान ।
तू ने जागृत कर मानवता,
किया मनुज का पुनरूत्थान ।।

आत्मा में ही परमात्मा का,
अनुपम है ज्योतिर्मय स्थान ।
जागो, उठो, स्वयं को पाओ,
यह था तेरा तत्व-ज्ञान ।।

मानव-मानव सभी एक हैं,
झूठा है सब भेद-विज्ञान ।
जन्म नहीं, शुभ कर्म दिव्य है,
गूंज उठा तव मंगल गान ।।

भूलें स्वर्ग, धरा के सुख-दुःख,
भूलें अन्य सभी अभिमान ।
भूलेंगे न कभी भी तुझ से,
उदय हुआ जो स्वर्ण विहान ।।

अपना ईश्वर तू ही खुद है,
जाग, जाग रे मानव जाग ।
जागा शिव है, सोया शव है,
त्याग, त्याग तम-निद्रा त्याग ।।

अपना भाग्य हाथ में तेरे,
भला-बुरा जो भी है काम ।
कर सकता है, रोक न कोई,
रावण बन अथवा बन राम ।।

प्राणीमात्र में परमेश्वर का,
सुप्त अनन्तानन्त प्रकाश ।
दीन-हीन मानव में जागृत,
तू ने किया आत्म-विश्वास ।।

देव-लोक में नहीं सुधा है,
सुधा मिलेगी धरती पर ।
मधुर भाव के सुधा पान से,
तृप्ति मिलेगी जीवन-भर ।।

कटुता का विष जो फैलाये,
वह मानव है अधम असुर ।
देव वही है मधुर भाव से,
पूरित जिसका अन्तर उर ।।

# युग पुरूष तुम्हें शत-शत वन्दन

तुम अभिनव युग के नव विधान,
रूढ़ बन्धनों के मुक्ति गान,
हे युग-पुरूष, हे युगाधार, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन ।

ज्ञान-ज्योति की ज्वलित ज्वाला,
आत्म-साधना का उजाला,
हे मिथ्या-तिमिर अभिनाशक, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन ।

तुम नव्य नभ के नव विहान,
नई चेतना के अभियान,
श्रमण संस्कृति के अमर-गायक, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन ।

अतीत युग के मधुर गायक,
अभिनव युग के हो अधिनायक,
नूतन-पुरातन युग शृंखला, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन ।

तू पद-दलितों का क्रान्ति-घोष,
अबल-साधकों का शक्ति-कोष,
हे क्रान्ति-पथ के महापथिक, अभिवन्दन है, शत-शत वन्दन ।

**- विजय मुनि 'शास्त्री'**

# श्रध्दा-सुमन

आदिदेव है ऋषभ जिनेश्वर,
ज्ञान-ज्योति का तू दिनकर ।
प्रथम प्रकाश उतारा तूने,
तमसावृत्त इस धरती पर ।।

भूख-भूख का गूंज रहा था,
कितना दारूण भीषण स्वर ।
कर्मयोग का तब तूने ही,
दिया बोध जग-मंगलकर ।।

पुण्यकर्म वह जिसके अन्दर,
सुरभित हो जन-जन का हित ।
तेरा यह सन्देश आज भी,
धरा स्वर्ग तक अभिनन्दित ।।

तू सबका था, सब थे तेरे,
एक दृष्टि थी समरस की ।
अतः चिरन्तन वेदों तक में,
गूंजित गाथा तब यश की ।।

नग्नदेह हिमगिरि-शिखरों पर,
ध्यान धरा अविचल तूने ।
सोया अन्तर जिनवर जागा,
पाया निज में जिन तूने ।।

भौतिक वैभव दिया, दिया फिर,
अक्षय आध्यात्मिक वैभव ।
अभय दान का परम देव तू,
भूलेंगे न तुझे भव-भव ।।

कर्म क्षेत्र के धन्य वीर थे,
जो पहले आगे आते हैं ।
पीछे तो लाखों अनुयायी,
बिना बुलाये आ जाते हैं ।।

कल क्या थे, यह नहीं सोचना,
सोचो अभी बनोगे क्या ?
ले अतीत से उचित प्रेरणा,
निज भवितव्य घड़ोगे क्या ?

संकल्पों से उठता मानव,
और उन्हीं से गिरता है ।
अच्छे और बुरे भावों का,
जग में मेला भरता है ।।

कैसी भी स्थिति आये-जाये,
भाव नहीं गिरने देना ।
शुभ की ज्योति बड़ी है जग में,
इसे नहीं बुझने देना ।।

अच्छा होगा, सब-कुछ अच्छा,
अच्छा है यदि अर्न्तमन ।
शुभ मन पर आधारित वाणी-
कर्मों का सब अच्छापन ।।

# वीरायतन-दर्शन

कवि, अलसित पलकों को खोलो, करो तनिक दृग-उन्मीलन,
देखो गिरी वैभार-तटी में विरमित युग-यति महा-श्रमण,
रूठी मानवता, मानव-घर लौट रही, मंगल गाओ -
स्वर्ग न नभ में, भू-तल पर है, आज तथ्य यह निवारण ।
भूलो मत करूणा - सेवा का सागर सम्मुख लहराता,
वीरायतन वीर - शासन का दृश्य मनोहर दिखलाता ।

सना समत्व-सुरभि से यह थल, त्याग-विभा से अमल-धवल,
तप, निर्जरा, आत्म-दर्शन ही जीवन-लक्ष्य यहाँ अविचल,
ज्ञान-मेरू हो, ध्यान-मेरू हो, यहाँ न आरोहण मुश्किल-
चाहे जो भी चढ़े शिखर तक लेकर श्रद्धा का संबल ।
यहाँ दिवस कल्याण बाँटता, आत्म-विचिन्तन शान्त निशा,
शुचिता, भक्ति, विनयता सब को सतत दिखाता सही दिशा ।

तुम कवि हो तो यह कवि-गुरू का मंगलप्रद उपक्रम मनहर,
करते सुन्दरता को सुन्दर पुण्य शिंशपा के तरूवर,
प्रकृति-गोद में इन तरूओं का जीवन कितना मोद भरा-
एक-एक से होड़ कर रहे छूने को ऊपर अम्बर ।
विष के बदले अमृत, यहीं तो मृत्यु बीच जीवन मिलता,
प्रेम देवता के हाथों से चिर-मरू में सरसिज खिलता ।

जो कुछ भी है यहाँ सत्य, शिव, मनहारी, सुखकर, सुन्दर,
प्रति-पल नूतन वेष बनाकर नटी-निसर्ग नृत्य-तत्पर,
सुमन-सुमन है यहाँ दूब भी आँखों को शीतल करती-
रूपराशि की खोजों में ही सचकित उर ये शैल-शिखर ।
छवि का भूखा मनुज यहाँ आ मत्त कलापी बन जाता,
एक अपूर्व अचिन्त्य लोक में वह बस अपने को पाता ।

एक-एक कर कितनी स्मृतियाँ मन-प्राणों में लहरातीं,
किंकर्तव्य-विमूढ़, भ्रमित को बोध - विचिन्तन दे जातीं,
गूंजी कभी इसी उपवन में जगतारक प्रभु की वाणी-
सतत ज्वलित पौरूष के मग में नियति नहीं बाधा लाती ।
वर्तमान के गेह पधारे जब अतीत बनकर पाहुन,
शिशु मराल तब क्यों न विवेकी हों अनुभव के मोती चुन ?

दूर-दूर के आतुर प्राणी भव-रूज यहाँ मिटा जाते,
चर्म-चक्षु की चर्चा ओछी, ज्ञान-चक्षु वे अपनाते,
समवसरण की पुण्य भूमि में मिटता उनका दारूण दुख-
ममता से भीगा सावन वे यहाँ जेठ में भी पाते ।
क्षण भर बैठ यहाँ ढूंढ़ो कवि, अपने भाव-रत्न खोए,
रहे अपरिचित तुम परिचित से, सदा अपरिचित ढिग रोए ।

मोह-धुलि-धुसर प्राणों को तुम चिन्तन जल से धो लो,
ब्राह्मी कला-तीर्थ में आकर निर्विकार बोली बोलो,
जिनवर का चारित्र्य-वृत्त है दृग सम्मुख प्रेरक, पावन-
चिर गति बनी श्रमण संस्कृति यह तुम भी समुद साथ हो लो ।
उपदेशक गुरूदेव, देशना यहाँ रात-दिन है चलती,
होते जो जिज्ञासु उन्हें ही गूढ़ ज्ञान की निधि मिलती ।

कर में त्याग, ज्ञान अन्तर में मुख में जन-कल्याण वचन,
राष्ट्रसंत जय ! कुलपति जय-जय ! जय सेवा-अर्पित जीवन !
संस्कृति, प्रकृति, विकृति तीनों का भेद यहीं आकर खुलता-
कलित कौमुदी अमरचन्द्र की करती उदासित कण-कण ।
है युग-पूज्य शास्ता ये ही, अग-जग इनका दास बना,
वाणी इन की अमर-भारत, चरित, मंजुल इतिहास बना ।

पारिपार्श्विक मुनिवर जितने, सभी निरंजन, विज्ञानी,
सभी लब्धि-धर, जग विरक्त हैं, प्रेम, आस्था, वरदानी,
मुनि अखिलेश वन्द्य, करूणा-धन, सखा मनीषी ज्योतिर्धर-
होती आत्मा स्वयं विभासित सुन इनकी तात्विक-वाणी ।
आए ये सुदूर गिरि-व्रज में रघुवर संग लक्ष्मण बन कर,
मंगल मूर्ति, श्रमण गरिमा-गृह, श्रुत-तत्वज्ञ, ज्ञान-निर्झर ।

तपःपूत व्यक्तित्व खोजने कवि, न दूर तुम को जाना,
न ही तुम्हें चन्दनबाला का आश्रव-संवर दुहराना,
**विदुषी, साध्वी-रत्न चन्दना, यहाँ लोक-सेवा में रत-**
शुचि महत्तरापद अधिकारिणि इन्हें विज्ञ-जन ने माना ।
मानवतावादी दर्शन में इनसे नव अध्याय जुड़ा,
नमन करो, करूणा-प्रवाह फिर आर्त जगत की ओर मुड़ा ।

पा गुरूवर से ज्ञान-सम्पदा, जो प्रबुद्ध, जो गत संशय,
कवि, विश्रुत ये वीर धरा के सौम्य तपी मुनिवर्य विजय,
श्रमण-संस्कृति समय समन्वित हुई पुनः इनको पाकर-
अन्ध मान्यता उन्मूलन में ये अविचल उर, चिर निर्भय ।
जीवन और जगत पर करता मानव-मन अनुक्षण चिन्तन,
आत्म-रूप की झलक दिखाता सब को एक श्रमण-दर्शन ।

शत-शत रम्य नगर है सम्प्रति इस अरण्य पर न्योछावर,
गुरूवर-पद-नख ज्योति प्राप्त कर ज्योति भरित भूतल-अम्बर,
वही ब्रह्मपुर क्षीरोदधी में गिरा-इन्दिरा अब रहती -
दिव्य महासतियों में दर्शित छवि उनकी मंगल, मनहर ।
पावन 'सुमति' 'साधना' 'सुयशा' संस्कृति बीज यहाँ बोतीं-
सहज 'चेतना' 'विभा' 'शुभा' उर नित कलि-कल्मष हैं धोतीं ।

राग-विराग एक सम जिनको, जिन्हें एक सम सुधा-गरल,
शशि-सीकर, रवि-कर दोनों में जिनका हृदय अटल-अविचल,
श्रम-संयम, समभाव-विभव से पूरित हैं जिनका जीवन-
है नमस्य ये मुनि 'समदर्शी' लो वन्दन कर अमित फल ।
कवि, तुम दृष्टि फिराकर देखो, पैर बढ़ाओ ठहर-ठहर,
वीरायतन वंदना थल है, वन्द्य यहाँ के सब मुनिवर ।

पूज्य दृष्ट चरणों में कवि, यदि समुचित प्रणति और वंदन,
तो फिर मानव हृदय छोड़ दें, क्यों अदृष्ट का आकर्षण ?
कल तक जिनकी ममता करूणा अविरल जन-जन पर बरसी-
करो आज उन रंभा-श्री को अर्पित तुम श्रद्धा चिन्तन ।
**अपने लिए सभी जीते हैं, तुम जगती के लिए जियो,**
**महासती की सीख न भूलो सुधा बाँट कर गरल पियो ।**

प्रकृति यहाँ गंभीर हृदय से अनुक्षण वन्दन-स्वर भरती,
बाल-विहग की मधुर काकली सतत खेद-पीड़ा हरती,
तेज दूर की हवा यहाँ आ रूकती वन्दन चाह लिए-
वन्दन का अनुराग संवारे सजल जलद छूते धरती ।
कवि, कल्पना तुम्हारी नभगा वह भी अब नीचे आए ।
मिल कर जग के अभ्यन्तर से गुरूवर की महिमा गाए ।

'वीरायतन' जागरण-युग की उर-प्रेरक रचना मनहर,
त्याग खड़ा है स्वार्थ - व्यूह में निर्विकार निर्भय अन्तर,
करूणा से नर-प्राण सरस है, द्वेष, स्नेह का अनुगामी-
शतक पंच-विंशति व्यतीत कर आया फिर ऐसा अवसर
अजब शौख गुरूवर का जादू मुखरित हुआ मौन कानन,
हटी प्रसुप्ति, मिला मनु सुत को आत्म-विचिन्तन का साधन ।

- कुमुद विद्यालंकार